40

ग्रंथि

सुमित्रानंदन पंत

H
811.6
P 195 G

H
811.6
P195G

जन्म—अल्मोड़ा की जगत्-प्रसिद्ध सौन्दर्यस्थली कौशानी में २० मई सन् १९०० ई० को हुआ।

अल्मोड़ा के एक अत्यन्त कुलीन एवं सम्पन्न परिवार में पंतजी ने जन्म लिया। पन्तजी के पिता पं० गंगादत्त पन्त अल्मोड़ा के अग्रगण्य नागरिक थे। आप अपने पिता की चौथी बालक सन्तान हैं। आपकी प्रा ।क शिक्षा अल्मोड़ा में हुई। तत्पश्चात् आपने बनारस में इन्ट्रेन्स और म्योर कालेज से एफ० ए० की परीक्षा पास की।

असहयोग आन्दोलन के समय महात्मा गांधी के सम्मुख शिक्षा संस्थान छोड़ने की प्रतिज्ञा करने के कारण फिर आपने विधिवत शिक्षा ग्रहण नहीं की। किन्तु अपनी लगन के कारण आपने अनेक विषयों का और विशेषकर साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया। आधुनिक युग की सम्पूर्ण प्रगतियों के सम्बन्ध में भी आपका ज्ञान विशेष रूप से प्रौढ़ है।

कविता की ओर पन्तजी की रुचि जन्मजात [illegible]ल्य-काल से ही आप कविता लिखने लगे थे। किसी [illegible] कवि के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह एक ही रात में अथवा एक ही रचना से प्रसिद्ध हो गया। पन्तजी के सम्बन्ध में भी यह अक्षरशः सत्य है। आप अपनी पहली ही छपी रचना से हिन्दी के साहित्याकाश में पूर्ण प्रभा से उदित हो गये। आपकी कविता के छन्द, भाषा, भाव और कल्पना ने सबको विमोहित कर लिया। तब से आज तक अपने कवि-जीवन में सतत जागरूक रह कर आप काव्य-रचना में प्रवृत्त हैं। आपकी अप्रतिम प्रतिभा से निरन्तर नये स्वर और नई चेतना के फूल हिन्दी के साहित्योद्यान में खिलते जा रहे हैं।

INDIAN INSTITUTE OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY SIMLA

ग्रंथि

लेखक

श्रीसुमित्रानंदन पंत

ग्रन्थ-संख्या—१६८

प्रकाशक तथा विक्रेता

भारती-भंडार

लीडर प्रेस, प्रयाग

Library IIAS, Shimla

H 811.6 P 195 G

00046382

लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद

संशोधित

मूल्य

...१:५०...

चतुर्थ संस्करण

सं० २०१४ वि०

मूल्य ७५ न०

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY

Acc. No. 46382

Date 2-2-74

SIMLA

H

811.6

P 195 G

विज्ञापन

ग्रन्थि मैंने सन् १९२० के जनवरी मास में लिखी थी। उच्छ्वास की तरह इसका कथा-भाग भी बहुत थोड़ा है ; पर शायद स्पष्ट उससे अधिक। छंद तुकांत नहीं। अतुकांत का सौन्दर्य-स्वरूप तब मेरे हृदय में प्रस्फुटित नहीं हो पाया था। अपने साहित्य में उन दिनों जैसा ढंग प्रचलित था, उसी के अनुरूप मैंने भी किसी तरह अपनी इस कहानी को वेतुका लिबास पहना दिया ; पर हिंदी में बड़ी ही मनोहर तथा परिपूर्ण प्रास-हीन सृष्टि हो सकती है। ग्रन्थि के प्रेमियों के सम्मुख भविष्य में अतुकांत अंगों की अधिक सुगठित प्रतिमा प्रस्तुत करने की आशा रखता हूँ।

१७ मई
१९२९

श्रीसुमित्रानंदन पंत

ग्रन्थ-संख्या—१६८
प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भंडार
लीडर प्रेस, प्रयाग

Library IIA3, Shimla
H 811.6 P 195 G
00046382

चतुर्थ संस्करण
सं० २०१४ वि०
मूल्य ७५ नए पैसे

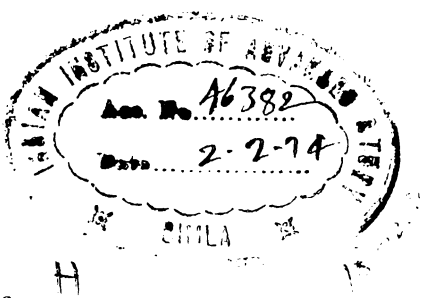

H
811.6
P 195 G

मुद्रक
बि० प्र० ठाकुर
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

विज्ञापन

ग्रन्थि मैंने सन् १९२० के जनवरी मास में लिखी थी। उच्छ्वास की तरह इसका कथा-भाग भी बहुत थोड़ा है ; पर शायद स्पष्ट उससे अधिक। छंद तुकांत नहीं। अतुकांत का सौन्दर्य-स्वरूप तब मेरे हृदय में प्रस्फुटित नहीं हो पाया था। अपने साहित्य में उन दिनों जैसा ढंग प्रचलित था, उसी के अनुरूप मैंने भी किसी तरह अपनी इस कहानी को वेतुका लिबास पहना दिया ; पर हिंदी में बड़ी ही मनोहर तथा परिपूर्ण प्रास-हीन सृष्टि हो सकती है। ग्रन्थि के प्रेमियों के सम्मुख भविष्य में अतुकांत अंगों की अधिक सुगठित प्रतिमा प्रस्तुत करने की आशा रखता हूँ।

१७ मई
१९२९

श्रीसुमित्रानंदन पंत

ग्रन्थि

एक बार—

एक बार बिंधे हृदय को बाँधकर
कल्पने, आओ, सजनि उस प्रेम की
सजल सुधि में मग्न हो जावें पुनः
खोजने खोए हुए निज रत्न को।
तरुणता की उन तरंगों में तरल
झूल लें दृग-चपल मीनों-सा, सहज
फेन के मोती पिरो सुख सूत में,
बुद्बुदों-सा गीत गा लें स्मृति-मधुर।

एक पल जग सिंधु का गंभीर गीत
आज पुलकित वीचियों में डूब जा!
हम प्रणय की सदय मुख छवि देख लें
लोल लहरों पर कलापति से लिखी!
पवन के उभरे गगनमय पंख-से
परम सुख के उस विशाल विलास में
शरद् घन-सा लीन हो, गिर पलक-सा,
भूल जावें, अल्प, विरही विश्व को!

वह मधुर मधुमास था, जब गंध से
मुग्ध होकर झूमते थे मधुप दल;
रसिक पिक से सरस तरुण रसाल थे
अवनि के सुख बढ़ रहे थे दिवस-से।
जानकर ऋतुराज का नव आगमन
अखिल कोमल कामनाएँ अवनि की
खिल उठी थीं मृदुल सुमनों में कोई
सफल होने को अवनि के ईश से।

तर निज कनक-किरणों को तपन
। गिरि को खींचता था कृपण-सा,
ा आभा में रँगा था वह पतन
कणों-सी वासनाओं से विपुल।
रता से सहज आभूषित हुई
ं कितनी हैं नहीं छिपती त्वरित,
य महिमा-सी, प्रभा अवसान से,
वर्द्धित अल्पता में, तिमिर में।

तरणि के ही संग तरल तरंग से
तरणि डूबी थी हमारी ताल में;
सांध्य निःस्वन-से गहन जल-गर्भ में
था हमारा विश्व तन्मय हो गया।
बुद्बुदे जिन चपल लहरों में प्रथम
गा रहे थे राग जीवन का अचिर,
अल्प पल, उनके प्रबल उत्थान में
हृदय की लहरें हमारी सो गईं।

× × ×

जब विमूर्छित नींद से मैं था जगा
(कौन जाने, किस तरह ?) पीयूष-सा
एक कोमल समव्यथित निःश्वास था
पुनर्जीवन-सा मुझे तब दे रहा।
मधुप बाला का मधुर मधु-मुग्ध राग
पद्म-दल में संपुटित था हो चुका,
काम्य उपवन में प्रथम जब था खिला
प्रणय-पद्म कुमुद कली के साथ ही।

शीश रख मेरा सुकोमल जाँघ पर
शशिकला सी एक बाला व्यग्र हो
देखती थी म्लान मुख मेरा, अचल
सदय, भीरु, अधीर, चिन्तित दृष्टि से
वह उपाय विहीन, पर आशामयी
स्नेह दृष्टि अनन्य कोमल हृदय की
करुण मंगल-कामना से थी भरी
हाय ! केवल मात्र साधन दीन की

नित्य ही मानव तरंगों में अतल
मग्न होते हैं कई, पर इस तरह
अमृत की जीवित लहर के बाँह में
जगत में कितने अभी झूले भला?
चपल जीवन की तरी भी, विश्व में
डूबती ही है, भँवर-सी घूमकर,
मग्न होकर किन्तु सबको सहज ही
नाव मिलती है नहीं यों दूसरी।

इंदु पर, उस इंदु-मुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से,
लाज से रक्तिम हुए थे ;—पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था!
बाल रजनी-सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में;
अचल, रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में।

जब विमूर्छित नींद से मैं था जगा
(कौन जाने, किस तरह ?) पीयूष-सा
एक कोमल समव्यथित निःश्वास था
पुनर्जीवन-सा मुझे तब दे रहा।
मधुप बाला का मधुर मधु-मुग्ध राग
पद्म-दल में संपुटित था हो चुका,
काम्य उपवन में प्रथम जब था खिला
प्रणय-पद्म कुमुद कली के साथ ही।

शीश रख मेरा सुकोमल जाँघ पर,
शशिकला सी एक बाला व्यग्र हो
देखती थी म्लान मुख मेरा, अचल,
सदय, भीरु, अधीर, चिन्तित दृष्टि से।
वह उपाय विहीन, पर आशामयी,
स्नेह दृष्टि अनन्य कोमल हृदय की
करुण मंगल-कामना से थी भरी;
हाय! केवल मात्र साधन दीन की!

नित्य ही मानव तरंगों में अतल
मग्न होते हैं कई, पर इस तरह
अमृत की जीवित लहर के बाँह में
जगत में कितने अभी झूले भला?
चपल जीवन की तरी भी, विश्व में
डूबती ही है, भँवर-सी घूमकर,
मग्न होकर किन्तु सबको सहज ही
नाव मिलती है नहीं यों दूसरी।

इंदु पर, उस इंदु-मुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से,
लाज से रक्तिम हुए थे ;—पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था!
बाल रजनी-सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में;
अचल, रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में।

एक पल, मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे,
चपलता ने इस विकंपित पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय संबंध था।
लाज की मादक सुरा-सी लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब-से,
छलकती थी बाढ़-सी सौंदर्य की
अधखुले सस्मित गढ़ों से, सीप-से।
इन गढ़ों में—रूप के आवर्त-से—
घूम फिर कर, नाव-से किसके नयन
हैं नहीं डूबे भटक कर, अटक कर,
भार से दब कर तरुण सौन्दर्य के?

जब प्रणय का प्रथम परिचय मूकता
दे चुकी थी हृदय को, तब यत्न से
बैठकर मैंने निकट ही, शांत हो,
विनत वाणी में प्रिया से यों कहा:—

'सलिल शोभे ! जो पतित, आहत भ्रमर
सदय हो तुमने लगाया हृदय से,
एक तरल तरंग से उसको बचा
दूसरी में क्यों डुबाती हो पुनः ?
'प्रेम कंटक से अचानक विद्ध हो
जो सुमन तरु से विलग है हो चुका,
निज दया से द्रवित उर में स्थान दे
क्या न सरस विकास दोगी तुम उसे ?
'मलिन उर छूकर तिमिर का अरुण कर
कनक-आभा में खिलाते हैं कमल,
प्रिय बिना तम शेष मेरे हृदय की
प्रणय कलिका की तुम्हीं प्रिय कांति हो।

'यह विलंब ! कठोर हृदये ! मग्न को
बालुका भी क्या बचाती है नहीं ?
निठुर का मुझको भरोसा है बड़ा,
गिरि शिलाएँ ही अभय आधार हैं।

'म्लान तम में ही कलाधर की कला
कौमुदी बन कीर्ति पाती है धवल,
दीनता के ही विकंपित पात्र में
दान बढ़कर छलकता है प्रीति से।

'प्रिय! निराश्रिति की कठिन बाहें नहीं
शिथिल पड़ती हैं प्रलोभन-भार से,
अल्पता की संकुचित आँखें सदा
उमड़ती हैं अल्प भी अपनाव से।
'दयानिल से विपुल पुलकित हो सहज
सरल उपकृति का सजल मानस प्रिये!
क्षीण करुणालोक का भी लोक को
है वृहत् प्रतिबिम्ब दिखलाता सदा।

'शरद के निर्मल तिमिर की ओट में
नव मिलन के पलक दल-सा झूमता
कौन मादक कर मुझे है छू रहा
प्रिय! तुम्हारी मूकता की आड़ से?

'यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की,
जो अपांगों से अधिक है देखता,
दूर होकर और बढ़ता है, तथा
वारि पीकर पूछता है घर सदा?'

इंदु की छवि में, तिमिर के गर्भ में,
अनिल की ध्वनि में, सलिल की वीचि में,
एक उत्सुकता विचरती थी, सरल
सुमन की स्मिति में, लता के अधर में।
निज पलक, मेरी विकलता, साथ ही
अवनि से, उर से मृगेक्षिणि ने उठा,
एक पल, निज स्नेह श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप-सी।

'नाथ!' कह, अतिशय मधुरता से दबे
सरस स्वर में, सुमुखि थी सकुचा गई;
उस अनूठे सूत्र ही में हृदय के
भाव सारे भर दिए, ताबीज-से।

देख रति ने मोतियों की लूट यह,
मृदुल गालों पर सुमुखि के लाज से
लाख-सी दी त्वरित लगवा, बंद कर
अधर विद्रुम द्वार अपने कोष के।
वह स्पृहा संकोच का सुंदर समर
अधर कंपित कर, कपोलों पर युगल
एक दुर्बल लालिमा में था बहा;
(विश्व विजयी प्रेम! औ' यह भीरुता!)

सुभग लगता है गुलाब सहज सदा,
क्या उषामय का पुनः कहना भला?
लालिमा ही से नहीं क्या टपकती
सेव की चिर सरसता, सुकुमारता?
पद नखों को गिन, समय के भार को
जो घटाती थी भुलाकर, अवनितल
खुरच कर, वह जड़ पलों की धृष्टता
थी वहाँ मानो छिपाना चाहती।

प्रथम केवल मोतियों को हंस जो
तरसता था, अब उसे तर सलिल में
कमलिनी के साथ क्रीड़ा की सुखद
लालसा पल-पल विकल थी कर रही।
प्रेमियों का कौश-सा कोमल हृदय
कोटि-कर सौंदर्य के कृश हाथ में
सहज ही दब कर, नवल आसक्ति से
फूल उठता है पुनः उन्मत्त हो!

रसिक वाचक! कामनाओं के चपल,
समुत्सुक व्याकुल पगों से प्रेम की
कृपण वीथी में विचर कर, कुशल से
कौन लौटा है हृदय को साथ ला?

देख रति ने मोतियों की लूट यह,
मृदुल गालों पर सुमुखि के लाज से
लाख-सी दी त्वरित लगवा, बंद कर
अधर विद्रुम द्वार अपने कोष के।
वह स्पृहा संकोच का सुंदर समर
अधर कंपित कर, कपोलों पर युगल
एक दुर्बल लालिमा में था बहा;
(विश्व विजयी प्रेम! औ' यह भीरुता!)

सुभग लगता है गुलाब सहज सदा,
क्या उषामय का पुनः कहना भला?
लालिमा ही से नहीं क्या टपकती
सेब की चिर सरसता, सुकुमारता?
पद नखों को गिन, समय के भार को
जो घटाती थी भुलाकर, अवनितल
खुरच कर, वह जड़ पलों की धृष्टता
थी वहाँ मानो छिपाना चाहती।

प्रथम केवल मोतियों को हंस जो
तरसता था, अब उसे तर सलिल में
कमलिनी के साथ क्रीड़ा की सुखद
लालसा पल-पल विकल थी कर रही।
प्रेमियों का कौश-सा कोमल हृदय
कोटि-कर सौंदर्य के कृश हाथ में
सहज ही दब कर, नवल आसक्ति से
फूल उठता है पुनः उन्मत्त हो!

रसिक वाचक! कामनाओं के चपल,
समुत्सुक व्याकुल पगों से प्रेम की
कृपण वीथी में विचर कर, कुशल से
कौन लौटा है हृदय को साथ ला?

एक प्रातः —

एक प्रातः स्वर्ण कर रवि के समुद
निज सुपरिचित वदन से थे खेलते,
कर्णमुक्ता चूम कोई गाल पर
प्रतिफलित थे ओस-बूँदों-से धवल।
बैठ वातायन निकट, उत्सुक नयन
देखती थी प्रियतमा उद्यान को,
पूछता था कुशल फूलों से जहाँ
मधुर स्वर में मधुप, सुख से फूल कर।

भीग मालिन की तरल जलधार से
एक मधुकर मूल में गिर कर, सजल
भग्न आशा-से छदों को पोंछ कर
पुनः उड़ने को विकल था हो रहा।
मंद मारुत से वसंती झूम कर
झुक रही थी तरल तिरछी पाँति में,
ललित लोल उमंग-सी लावण्य की,
मानिनी-सी पीन यौवन भार से।

तूल-सी मार्जार बाला सामने
निरत थी निज बालक्रीड़ा में—कभी
उछलती थी, फिर दुबक कर ताकती,
घूमती थी साथ फिर फिर पूँछ के।
मंद मुसकातीं, चपल भ्रू-वीचि में
हृदय को प्रतिपल डुबातीं, आज भी
संगिनी सखियाँ वहाँ आईं, सहज
हास औ' परिहास निरता, दोलिता!

देख कर अपनी सखी को पलक सी
ध्यान लग्ना, एक ने संकेत कर,
यों वयस्या से दबे स्वर में कहा—
'मग्न है नव कमल वन में हंसिनी!'
लक्ष कर मार्जार बाला को पुनः
दूसरी बोली—'अरी, ये खेल अब
खो चुके हैं विभव सब तारुण्य के
मुग्ध, तिरछे चपल नयनों के लिए।'

'प्रथम, भय से मीन के लघु बाल जो
थे छिपे रहते गहन जल में, तरल
ऊर्मियों के साथ क्रीड़ा की उन्हें
लालसा अब है विकल करने लगी।'
'कमल पर जो चारु दो खंजन, प्रथम
पंख फड़काना नहीं थे जानते,
चपल चोखी चोट कर अब पंख की
वे विकल करने लगे हैं भ्रमर को।'

'संकुचित थीं प्रात जो नव क्यारियाँ
दुपहरी की, वे अरुण की ज्योति में
फूलने अब हैं लगीं, उन्मत्त कर
लोचनों को निज सुरा की कांति से।'

सहम सखियों के निठुर आक्षेप से,
सुभ्रुवों के साथ मन को खींचती
वह मृगी-सी चकित आँखों को फिरा
थी छिपाना चाहती अपनी दशा।
तरुणता की और-मुख चिर सहचरी
चतुरता, जो तरुणियों के हृदय को
है बना देती अभेद्य रहस्य-सा,
वह किसे है सतत भटकाती नहीं?

'सजनि! आज विलंब-सा कैसे हुआ?
प्रियतमा बोली,—'कहीं क्या मधुकरी
बँध गई थी नव नलिन की गोद में,
मुग्ध हो मधु से, सुछवि से, सुरभि से।'

देख कर अपनी सखी को पलक सी
ध्यान लग्ना, एक ने संकेत कर,
यों वयस्या से दबे स्वर में कहा—
'मग्न है नव कमल वन में हंसिनी!'
लक्ष कर मार्जार बाला को पुनः
दूसरी बोली—'अरी, ये खेल अब
खो चुके हैं विभव सब तारुण्य के
मुग्ध, तिरछे चपल नयनों के लिए।'

'प्रथम, भय से मीन के लघु बाल जो
थे छिपे रहते गहन जल में, तरल
ऊर्मियों के साथ क्रीड़ा की उन्हें
लालसा अब है विकल करने लगी।'
'कमल पर जो चारु दो खंजन, प्रथम
पंख फड़काना नहीं थे जानते,
चपल चोखी चोट कर अब पंख की
वे विकल करने लगे हैं भ्रमर को।'

'संकुचित थीं प्रात जो नव क्यारियाँ
दुपहरी की, वे अरुण की ज्योति में
फूलने अब हैं लगीं, उन्मत्त कर
लोचनों को निज सुरा की कांति से।'

सहम सखियों के निठुर आक्षेप से,
सुभ्रुवों के साथ मन को खींचती
वह मृगी-सी चकित आँखों को फिरा
थी छिपाना चाहती अपनी दशा।
तरुणता की और-मुख चिर सहचरी
चतुरता, जो तरुणियों के हृदय को
है बना देती अभेद्य रहस्य-सा,
वह किसे है सतत भटकाती नहीं?

'सजनि! आज विलंब-सा कैसे हुआ?
प्रियतमा बोली,—'कहीं क्या मधुकरी
बँध गई थी नव नलिन की गोद में,
मुग्ध हो मधु से, सुछवि से, सुरभि से।'

'कुंज के या कुटिल काँटों से कहीं
बिंध गई थी विहगिनी? अथवा कहीं
सरल शफरी फँस गई थी सुमन-सी
तरल छवि के अलक के-से जाल में?'
साँझ के नव जलद में रवि रश्मि-सी
रसिकता जिसके सुसस्मित वदन से
झलकती थी, वह सखी बोली पुनः
सजल जलधर-सी सरस मृदु भाषिणी;—

'एक दिन संध्या समय मैंने सखी!
एक सुखमय दृश्य देखा,—एक अलि
पद्मिनी का विम्ब सर में देख कर
डूबता है सलिल में मधुपान को।
'बाँधती है एक मृदुल मृणालिनी
मत्त वाल गयंद को कृश सूत्र से,
गूँथ मुक्ता-हार एक मरालिनी
हंसपति को दे रही उपहार है।'

'देखता है निर्निमेष नयन चकोर
युगल चंद्रों को,—सजनि ! उस दृश्य की
चारु चर्चा ने हमारा प्रिय समय
हर लिया उस हंसिनी के हृदय-सा।'

'याद आती है, मुझे अपनी कथा,'
तीसरी बोली—'बहुत दिन से बँधे
हृदय में संयाम, गोपन से पला
प्रेम संप्रति फूटना है चाहता!
'पूर्णता स्मृति हीन है, सत्प्रेम की
मूक वाणी एक अनुभव है सही,
बिम्ब भी मिलता नहीं सौन्दर्य का,
घाव भी पर हाय! मिटता है नहीं।
'वायु विस्मित गूढ़ छाया में, तथा
सरल तुतले बिम्ब में भी वारि के
ये नयन डूबे अनेकों बार
काव्य के प्राग्वर्ण पर भी रुके

INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
No. 46382

'स्तब्ध रजनी में डरे, कौतुक भरे,
तारकों से भी लड़े हैं, कमल पर
दुलकती लघु ओस की बूँदें कई
हैं इन्होंने प्रात पकड़ीं पलक से।
'साँझ को, उड़ते शरद के जलद से
सीख सहृदयता, उसी के साथ ये
लीन भी हैं हो चुके आकाश में,
विगह बाला की व्यथा को खोजने।'

'यह नहीं, जल वीचियों में शशि कला
अलि! इन्होंने किलकती देखी न हो,
शशि-करों से कौमुदी को छीन कर
कुमुदिनी को मार भी ये हैं चुके।
'किन्तु जिस मोती-मनोहर मूर्ति को
एक दिन देखा इन्होंने, ये उसे
खोजते हैं नित्य तब से अश्रु से,
हास से, उच्छ्वास से, अपनाव से।

'सजनि ! पतले पत्र से चित्रित जलद
व्योम में छाये हुए थे, तनिक भी
वृष्टि की आशा न थी, मैं पवन के
गीत अंचल में मधुर थी भर रही।
'जब, अचानक, अनिल की छवि में पला
एक जलकण, जलद शिशु-सा, पलक पर
आ पड़ा सुकुमारता-सा, गान-सा,
चाह-सा, सुधि-सा, सगुन-सा, स्वप्न-सा।

सुन चुकी हूँ विहग बाला के रँगे
गीत मैं तब से अरुण की ज्योति में,
हूँ विलोक चुकी उषा की अधखुली
लालिमामय सजल आँखें, कमल-सी।
'तृषित चातक को तरसता देखकर
ले चुकी हूँ स्वाति-जल का स्वाद भी।
सरल, उड़ते बुलबुलों को पकड़कर
करुण क्रंदन भी श्रवण हूँ कर चुकी।

'देख इंद्रधनुष अनेकों वार मैं
भ्रू युगल मटका चुकी हूँ सेतु-से,
देख केले को थिरकता केतु-सा
नृत्य भी हूँ कर चुकी एकांत में।
'पकड़ उड़ते दीप वर्षा काल के,
रख हथेली पर, अँधेरी रात को,
मैं नियति की रेख भी हूँ पढ़ चुकी,
सजनि! उनकी खोजती लघु ज्योति में।

'सुरसरी को प्रथम जिस जल-विन्दु ने
सरणि सागर की दिखाई थी, उसे
खोजने को भी वहा मैं हूँ चुकी
एक लघु नादान आँसू मोम-सा।
हरित प्रिय छोटे पगों से जगत की
वेदिका को पार करता देखकर,
एक प्रातः, दूव से भी मैं, वहिन!
पग सहस्र मिला चुकी हूँ, ओस-से।

दीप नीचे, म्लान मूर्छित तिमिर के
करुण अंचल को टटोल, छिपी हुई
दग्ध शलभों की विनीरव वेदना
धो चुकी हूँ आँसुओं की बाढ़ से।
'विरहिणी की कल्पना कर एक दिन,
एक पीले पात में अपनी दशा
विविध यत्नों से सुलाकर, मैं उसे
बार-बार लगा चुकी हूँ हृदय से।

'स्वप्न के सस्मित अधर पर, नींद में,
एक बार किसी अपरिचित साँस का
अर्ध चुंबन छोड़, मैं झट चौंक कर
जग पड़ी हूँ अनिल-पीड़ित लहर-सी।
'हूँ विलोक चुकी उजेले भाग्य में
सखि ! अचानक तारकों-से टूटते
करुण कोमल भेद भी हूँ पढ़ चुकी
मूक उर के, अश्रु अपलक नयन के।

'किन्तु उस कण की सजल सुधि में हृदय
हूँ सदा तब से लपेटी, स्वर्ग के
उस अमृत, अस्फुट, अलौकिक स्पर्श से
तार गुंजित कर चुकी हूँ प्रणय का।
'बालकों के हास से उसका चपल
चित्र अंकित कर चुकी हूँ हृदय में,
दे चुकी हूँ भेंट तारों से बड़े
अश्रु कण, शशि-रश्मियों में गूँथ कर।
'मधुकरी की मधुभरी वीणा चुरा
गीत गाती हूँ कुसुम सुकुमार के,
सुरसरी की धार में हूँ ढूँढ़ती
शक्ति प्रियतम की अमित उपकारिणी।'

सुन प्रणय के इस अनूठे काव्य को
हृदय से लिपटा उसे, पहली सखी
तरुण अनुभव में तुले स्वर में उसे
मर्म समझाने लगी यों प्रेम का।

'निपट अनभिज्ञा अभी तुम हो बहिन!
प्रेमिका का गर्व रखती हो वृथा;
अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो न क्या
तरुणता तुमसे लड़ी अभिलाष-सी?
'मत्त-गज-से पुरुष को जिसने नहीं
बाँध डाला दृष्टि के कृश सूत्र में,
बस, बिना सोचे, अचानक, प्रेम को
हृदय जिसने हो न अर्पण कर सका;
'प्रेम ही का नाम जप जिसने नहीं
रात्रि के पल हों गिने, प्रतिशब्द से
चौंक कर उत्सुक नयन जिसने उधर
हो न देखा,—प्यार क्या उसने किया?

'मंद चलकर, रुक अचानक, अधखुले
चपल पलकों से हृदय प्राणेश का
गुदगुदाया हो नहीं जिसने कभी,
तरुणता का गर्व क्या उसने किया?

'हास सरिता में सरोजों-से खिले
गाल के गहरे गढ़ों को, मधुप-से
चुंबनों से हो नहीं जिसने भरा,
उस खिली चंपा कली ने क्या किया?

'देश के इतिहास के-से बहिन! तुम
वृत्त कोरे गिन रही हो;' पुनः वह
प्रेमिका बोली,--'सरस मेरी कथा
हाय! सब तुमने मिला दी धूल में।'

अनिल-कल्पित, कमल-कोमल गात को
अंक भरकर रसिक! किसकी चाह की
बाँह तृप्त हुई? तुहिन-जल से हसित
किसलयों को चूम किसका मन बुझा?
इस तरह प्रतिदिवस सखियों में हुई
प्रेम-चर्चा सुन मधुर मुसकान से
भाग लेती, वह सरलता की कला
हर रही थी कुमुद की प्रिय कुटिलता।

अब इधर—

अब इधर मेरी दशा उस समय की
श्रवण कर लें,—कठिन कंटक कुसुम के
अधिक कोमल गात से बिंध, किस तरह
अलग जग के वृंत से था हो गया।
नियति ने ही निज कुटिल कर से सुखद
गोद मेरी लाड़ की थी छीन ली;
बाल्य में ही हो गई थी लुप्त हा!
मातृ-अंचल की अभय छाया मुझे।

पेटिका दुहरी पिता के यत्न की
पंचदश में खो, स्वमातुल के यहाँ
उन दिनों मैं था, कृपण से दान-सी,
दैव से जब प्रेमिका मुझको मिली।
निठुर विधि ने स्वर्ग की वह कीर्ति भी
तोड़ कर माता पिता की गोद से
डाल दी थी बालकों के हास-सी
अति सरल अनभिज्ञता के अधर पर।

एक सुखमय सूत्र में कुछ काल को
गूँथने ही के लिए क्या भाग्य ने
इस तरह हमको छुड़ाया वृंत से?
वामता होती सहायक है कभी।
गूढ़ भावी! मलिन तम के गर्भ में
स्वर्ण छवि का भार रहता है छिपा!
सलिल-कण के पतन में भी गगन से,
भव्य मुक्ता गुप्त रहता है कहीं।

हाँ, तरणि थी मग्न जब मेरी हुई
(सरस मोती के लिए ही ?) उस समय
छलकता था वक्ष मेरा स्फीति से,
मुग्ध विस्मय से, अतृप्त भुलाव से!
लग्न यौवन के अधीर दबाव से
उमग पीन उभार-सा हलका हृदय
अति अजान खिंचाव से सौन्दर्य के
ढुलकता था अमित सुख के स्वर्ग को।

बाल्य की विस्मयभरी आँखें, मृदुल
कलपना की कृश लटों में उलझ के
रूप की सुकुमार कलिका के निकट
झूम, मँडराने लगी थीं घूम कर।
चपल पलकों में छिपे सौन्दर्य के
सहज दब कर, हृदय मादकता मिली
गुदगुदी के स्निग्ध पुलकित स्पर्श को
समुत्सुक होने लगा था प्रतिदिवस।

दृष्टि-पथ में दूर अस्फुट प्यास-सी
खेलती थी एक रजत मरीचिका,
शरद के बिखरे सुनहले जलद-सी
बदलती थी रूप आशा निरंतर।
अह, सुरा का बुलबुला यौवन नवल
चंद्रिका से अधर पर अटका हुआ,
हृदय को किस सूक्ष्मता के छोर तक
जलद-सा है सहज ले जाता उड़ा!

× × ×

प्रात-सा जो दृश्य जीवन का नया
था खुला पहले सुनहले स्पर्श से,
साँझ की मूर्छित प्रभा के पत्र पर
करुण उपसंहार हा! उसका मिला!!
गिर पड़ा वह स्वप्न मेरा अश्रु-सा
पलक-दल को छू अचानक, कमल के
अंक में अटका तुहिन-जल अनिल की
एक हलकी थपथपी से सो गया!

विज्ञ वाचक! और भी उपकरण है
शेष मेरे पास दुख का इस समय;
किन्तु मैं सब भाँति सुख-सम्पन्न हूँ
वेदना के इस मनोहर विपिन में।

पतन के नीले अधर पर भाग्य का
जो निठुर उपहास मैंने आप को
आज दिखलाया, उसे किसकी दया
कर सकी है मंद? क्या लोकेश की?
कुटिल भावी के अँधेरे कूप में
और कितने हैं अभी आँसू छिपे,—
छलकती आँखें उन्हें प्रिय! फिर कभी
भेंट देंगी कर-कमल में आपके।

या किसी के प्रेम-वंचित पलक की
मूक जड़ता है? पवन में विचर कर,
पूछती है जो सितारों से सतत...
'प्रिय! तुम्हारी नींद किसने छीन ली?'
यह किसी के रुदन का सूखा हुआ
सिंधु है क्या? जो दुखों की बाढ़ में
सृष्टि की सत्ता डुबाने के लिए
उमड़ता है एक नीरव लहर में!

आह, यह किसका अँधेरा भाग्य है?
प्रलय-छाया-सा, अनंत विषाद-सा!
कौन मेरे कल्पना के विपिन में
पागलों-सा यह अभय है घूमता?
हृदय! यह क्या दग्ध तेरा चित्र है?
धूम ही है शेष अब जिसमें रहा!
इस पवित्र दुकूल से तू दैव का
वदन ढँकने के लिए क्यों व्यग्र है?

× × ×

गर्व - सा गिरि उच्च निर्झर स्रोत से
स्वप्न-सुख मेरा शिलामय हृदय में
घोष भीषण कर रहा है वज्र-सा,
वात-सा, भूकंप - सा, उत्पात - सा!
तारकों के अचल पलकों से विपुल
मौन विस्मय छीन कर मेरा पतन
निर्निमेष विलोकता है विश्व की
भीरुता को चंद्रमा की ज्योति में!

तिमिर के अज्ञात अंचल में छिपी
झूमती है भ्रांति मेरे भ्रमर-सी,
चंद्रिका की लहर में है खेलती
भग्न आशा आज शतशत खंड हो!
तिमिर!—यह क्या विश्व का उन्माद है
जो छिपाता है प्रकृति के रूप को?
या किसी की यह विनीरव आह है
खोजती है जो प्रलय की राह को?

आज मैं सब भाँति सुख सम्पन्न हूँ
वेदना के इस मनोरम विपिन में;
विजन छाया में द्रुमों की, योग-सी,
विचरती है मौन मेरी वेदना!
विपुल कुंजों की सघनता में छिपी
ऊँघती है नींद-सी मेरी स्पृहा;
ललित लतिका के विकंपित अधर में
काँपती है मुखर मेरी कल्पना!

ओस-जल-से सजल मेरे अश्रु हैं
पलक दल में दूब के बिखरे पड़े!
पवन पीले पात में मेरा विरह
है खिलाता दलित मुझे फूल-सा!
सुमन दल में फूट, पागल-सी, अखिल
प्रणय की स्मृति हँस रही है, मुकुल में
वास है अज्ञात भावी कर रही
आज मेरी द्रौपदी-सी परवशा!

ज्ञान? यह तो इंद्रियों की श्रांति है,
शून्य जृंभा मात्र निद्रित बुद्धि की;
जुगनुओं की ज्योति से, वन में विजन,
जन्म पीपल के तले इसका हुआ।
वेदना के ही सुरीले हाथ से
है बना यह विश्व, इसका परम पद
वेदना का ही मनोहर रूप है,
वेदना का ही स्वतंत्र विनोद है।

वेदना से भी निरापद क्या अहा!
और कोई शरण है संसार में?
वेदना से भी अधिक निर्भय तथा
निष्कपट साम्राज्य है क्या स्वर्ग का?
कर्म के किस जटिल विस्तृत जाल में
है गुँथी ब्रह्मांड की यह कल्पना!
योगबल का अटल आसन है अड़ा
वेदना के किस गहन स्तर में अहा!

आह, उस सर्वोच्च पद की कल्पना
विश्व का कैसा उपल उन्माद है!
यह विशाल महत्त्व कितना रिक्त है,
विपुलता कितनी अबल, असहाय है!
कौन-सी ऐसी निरापद है दशा
लोग अभ्युत्थान कहते हैं जिसे?
पतन, इसमें कौन-सा अभिशाप है
जो कँपाता है जगत के धैर्य को?

निपट नग्न निरीहता को छोड़कर
कौन कर सकता मनोरथ पूर्ति है?
कौन अज्ञ दरिद्रता से अधिकतर
शक्तिमय है, श्रेष्ठ है, सम्पन्न है?
सौख्य? यह तो साधना का शत्रु है,
रिक्त, कुंठित क्षीणता है शक्ति की;
हा! अलस के इस अपाहज स्वाँग में
हो गई क्यों मग्न जग की गहनता!

आज मैं कंगाल हूँ—क्या यह प्रथम
आज मैंने ही कहा? जो हृदय! तुम
बह रहे हो मुक्त हलके मोद में
भूल कर दुर्दैव के गुरु भार को!
मैं अकेला विपिन में बैठा हुआ
सींचता हूँ विजनता से हृदय को,
और उसकी भेदती कृश दृष्टि से
ढूँढ़ता हूँ विश्व के उन्माद को।

विश्व,—यह कैसी मनोहर भूल है!
मधुर दुर्बलता!—कई छोटी बड़ी
अल्पताएँ जोड़, लीला के लिए,
यह निराला खेल क्या विधि ने रचा?
कौन-सी ऐसी परम वह वस्तु है
भटकते हैं मनुजगण जिसके लिए?
कौन-सा ऐसा चरम सौन्दर्य है
खींचता है जो जगत के हृदय को?

प्रेम-वंचित—

प्रेम-वंचित को तथा कंगाल को
है कहाँ आश्रय? विरह की वह्नि में
भस्म होकर हृदय की दुर्बल दशा
होगई परिणत विरति-सी शक्ति में।
सुहृद्वर! कंगाल, कृश कंकाल-सा,
भैरवी से भी सुरीला है अहा!
किस गहनता के अधर से फूट कर
फैलते हैं शून्य स्वर इसके सदा!

शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह !—अहह, कराहते इस शब्द को
किस कुलिश की तीक्ष्ण, चुभती नोंक से
निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा !!

———

वेदना !—कैसा करुण उद्गार है !
वेदना हो है अखिल ब्रह्मांड यह,
तुहिन में, तृण में, उपल में, लहर में,
तारकों में, व्योम में है वेदना !
वेदना !—कितना विशद यह रूप है !
यह अँधेरे हृदय की दीपक शिखा !
रूप की अंतिम छटा ! औ' विश्व की
अगमचरम अवधि, क्षितिज की परिधि-सी !

कौन दोषी है? यही तो न्याय है !
वह मधुप विंध कर तड़पता है, उधर
दग्ध चातक तरसता है,--विश्व का
नियम है यह ; रो, अभागे हृदय ! रो !

× × ×

कौन वह बिछुड़े दिलों की दुर्दशा
पोंछ सकता है? दृगों की बाढ़ में
विकल, बिखरे, बुदबुदों की बूड़ती
मौन आहें हाय ! कौन समझ सका ?

आह !—सूखे आँसुओं की कल्पना,
कोहरे-सी मुक्त मग में झूम कर,
दग्ध उर का भार हर, तुम जलद-सी
बरसती हो स्वच्छ हलकी शांति में !
अश्रु,—हे अनमोल मोती दृष्टि के !
नयन के नादान शिशु ! इस विश्व में
आँख हैं सौन्दर्य जितना देखतीं
प्रतनु ! तुम उससे मनोरम हो कहीं।

अश्रु !—दिल की गूढ़ कविता के सरल
औ' सलोने भाव ! माला की तरह
विकल पल में पलक जपते हैं तुम्हें,
तुम हृदय के घाव धोते हो सदा।
वेदने ! तुम विश्व की कृश दृष्टि हो,
तुम महा संगीत, नीरव हास हो,
है तुम्हारा हृदय माखन का बना,
आँसुओं का खेल भाता है तुम्हें !

मंजु छाया के विपिन में पूर्णिमा
सजल पत्रों से टपकती है जहाँ,
विचरती हो वेश प्रतिपल बदल कर,
सुघर मोती-से पदों से ओस के।
अमृत आशा! चिर दुखी की सहचरी
नित नई मिति-सी, मनोरम रूप-सी,
विभव वंचित, तृषित, लालायित नयन
देखते हैं सदय मुख तेरा सदा।

•

देवि! ऊषा के खिले उद्यान में
सुरभि वेणी में भ्रमर को गूँथ कर,
रेणु की साड़ी पहन, औ' तुहिन का
मुकुट रख, तुम खोलती हो मुकुल को!
मेघ-से उन्माद! तुम स्वर्गीय हो,
कुमुद-कर से जन्म पा, तुम मधुप के
गीत पीकर मत्त रहते हो सदा,
मौन औ' अनिमेष निर्जन पुष्प-से!

और, भोले प्रेम ! क्या तुम हो बने
वेदना के विकल हाथों से ? जहाँ
झूमते गज-से विचरते हो, वहीं
आह है, उन्माद है, उत्ताप है !
पर नहीं, तुम चपल हो, अज्ञान हो,
हृदय है, मस्तिष्क रखते हो नहीं,
बस, बिना सोचे, हृदय को छीन कर,
सौंप देते हो अपरिचित हाथ में !

स्मृति ! यदपि तुम प्रणय की पद चिह्न हो,
पर निरी हो बालिका—तुम हृदय को
गुदगुदाती हो, तरल जलविम्ब-सी
तैरती हो, बाल क्रीड़ा कर सदा।
नियति ! तुम निर्दोष और अछूत हो,
सहज हो सुकुमार, चकई का तुम्हें,
खेल अति प्रिय है, सतत कृश सूत्र से
तुम फिराती हो जगत को समय सा !

छिः सरल सौन्दर्य ! तुम सचमुच बड़े
निठुर औ' नादान हो ! सुकुमार, यों
पलक दल में, तारकों में, अधर में
खेल कर तुम कर रहे हो हाय ! क्या ?
जानते हो क्या ? सुकोमल गाल पर
कृश अँगुलियों पर, कटी कटि पर छिपे,
तुम मिचौनी खेल कर कितना गहन
घाव करते हो सुमन-से हृदय में !

औ' अकेले चिबुक तिल से, कुछ उठी
कुछ गिरी भ्रू वीचि से, कुछ कुछ खुली
नयनता से, कुछ रुकी मुस्कान से
छीनते किस भाँति हो तुम धैर्य को !
मुकुल के भीतर उषा की रश्मि से
जन्म पा, मधु की मधुरता, धूलि की
मृदुलता, कटु कंटकों की प्रखरता,
मुग्धता ली मधुप की तुमने चुरा।

देख रोता है चकोर इधर, वहाँ
तरसता है तृषित चातक वारि को,
वह, मधुप विंध कर तड़पता है, यही
नियम है संसार का, रो हृदय, रो!
शिथिल दर्शन! ज्ञान जृंभा के अलस!
वृद्ध अनुभव की सिकोड़, वृथा मुझे
सांत्वना मत दो, विरस उपदेश के
उपल मत मारो, न बहलाओ हृदय।

व्यर्थ मेरा धन न यों छीनो,--सजल
वेदना, यह प्रणय की दी वेदना;
मूक तम, वाचाल नग्न शिशिर, दवी
शून्य गर्जन, आह, मादक सुधि अटल;
और भी, हाँ, प्रियतमा के रूप का
भार, ध्रुव-से अश्रु आँखों में चुभे
कंटकों का हार, कुछ उद्गार जो
बादलों-से उमड़ते हैं हृदय में!

हाय रे मानव हृदय ! तुझसे जहाँ
वज्र भी भयभीत होता है, वहीं
देख तेरी मृदुलता तिल सुमन भी
संकुचित हो सहम जाता है अहा !
ग्रंथि बंधन !—इस सुनहली ग्रंथि में
स्वर्ग की औ' विश्व की मंगलमयी
जो अनोखी चाह, जो उन्मत्त धन
है छिपा, वह एक है, अनमोल है !

शैवलिनि ! जाओ, मिलो तुम सिंधु से ,
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन को
चंद्रिके ! चूमो तरंगों के अधर ,
उडुगणो ! गाओ, पवन वीणा बजा !
पर, हृदय ! सब भाँति तू कंगाल है ,
उठ, किसी निर्जन विपिन में बैठ कर
अश्रुओं की बाढ़ में अपनी विकी
भग्न भावी को डुबा दे आँख-सी !

हाय! मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रंथि बंधन हो गया, वह नव कमल
मधुप-सा मेरा हृदय लेकर, किसी
अन्य मानस का विभूषण हो गया!
पाणि! कोमल पाणि! निज बंधूक की
मृदु हथेली में सरल मेरा हृदय
भूल से यदि ले लिया था, तो मुझे
क्यों न वह लौटा दिया तुमने पुनः?

प्रणय की पतली अँगुलियाँ क्या किसी
गान से विधि ने गढ़ीं? जो हृदय को,
याद आते ही, विकल संगीत में
बदल देती हैं भुलाकर मुग्ध कर!
याद है मुझको अभी वह जड़ समय
ब्याह के दिन जब विकल दुर्बल हृदय
अश्रुओं से तारकों को विजन में
गिन रहा था, व्यस्त हो, उद्भ्रांत हो!

वह स्पृहा जो ऊर्मि-सी उठ, इन्दु से
प्रणय गाथा बिंबिता कर, प्राण को
भेजती संवाद थी, सहसा निठुर
नियति ने निज कुटिल पद से कुचल दी।
हा! अभय भवितव्यते! किस प्रलय के
घोर तम से जन्म तेरा है हुआ!
वात, उल्का वज्र औ' भूकंप को
कूट, क्या तेरा हृदय विधि ने गढ़ा?

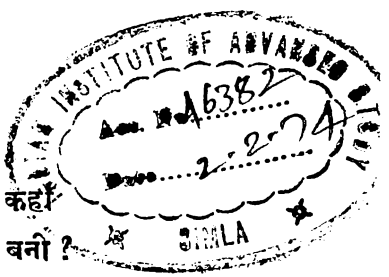

तू सरल कोमल कुसुम दल में कहाँ
है छिपी रहती कठिन कंटक बनी?
शांत नभ में कब, कहाँ है छोड़ती,
कौन जाने, तू छिपे तूफान को!
स्वर्ण-मृग तेरा पिशाचिनि! हर चुका
इष्ट कितनों के हृदय का है अहा!
भटकते कितने नहीं हैं मुग्ध हो
देख रजत मरीचिका तेरी सदा!

× × ×